International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 264-271

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 264-271
© 2017
www.anantaajournal.com
Received: 12-05-2017
Accepted: 14-06-2017

Nandini Das
Course - M.Phil, Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, Shipra Hostel, New Delhi, India

Correspondence
Nandini Das
Course - M.Phil, Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, Shipra Hostel, New Delhi, India

गर्भाधान संस्कार – वैज्ञानिक सन्दर्भे

Nandini Das

सारांश

परमब्रह्म द्वारा सृष्टि की गयी विविध योनि तथा प्राणिओं का वासस्थान पृथ्वीलोक है। सभी प्राणिओं में आहार-निद्रा-भय-मैथुन समानरूप में स्थित है। परन्तु इन सभी जीवों में मनुष्य जीव ही सर्वश्रेष्ठ हैं, कारण एकमात्र धर्म ही मनुष्य को अन्य प्राणियों से तथा पशु से विशेष बनाता हैं। धर्म मानव को जीवन में उचित पथ, जीवनशैली, आचार, व्यवहार आदि निर्देश करता हैं। मानव जीवनशैली में संस्कार अतिमहत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, वास्तव में देखा जाय तो मनुष्य का जीवन संस्कारों का ही क्षेत्र है। मनुष्य का मन को जिसप्रकार इन्द्रियों का लगाम कहा जाता हैं उसी प्रकार संस्कार भी मनुष्य जीवन का बन्धन होते है, क्योकिं बिना लगाम के इन्द्रियाँ इतस्ततः परिवर्तित होता रहते है। संस्कार रहित मनुष्य जीवन भी श्रृङ्खलाबद्ध नहीं होते है। इसीलिए मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक उन्नति के लिए जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त भिन्न भिन्न संस्कारों का वर्णन प्राचीन ऋषि-मुनियों ने बहुत सुन्दर ढ्ग से की है। षोडशसंस्कारों में गर्भाधानसंस्कार का स्थान प्रथम है। प्राणी जिसप्रकार जन्म ग्रहण करते है उसीप्रकार मृत्यु को भी प्राप्त करते हैं, परन्तु ईश्वर ने पृथ्वी का सामञ्जस्य बनाये रखने के लिए सन्तति का विधान दिया है। सन्तनि के जन्म के लिए बीजवपन करना ही गर्भाधान संस्कार है। प्राचीन ऋषिओं के अनुसार शिशु की मन, स्वभाव, जीवनक्षेत्र आदि सूक्ष्मरूप में बीजवपन के समय में ही निधार्रित होते हैं। स्त्री-पुरुष के मिलन को केवल भोग-विलास की वस्तु न समझकर उत्तम सन्तान प्राप्ति के लिए भावना-शरीर-क्षण-काल आदि गर्भाधानसंस्कार के रूप में वर्णन किया गया है। इसीलिए गर्भाधान संस्कार विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण है।

मुख्यशब्द: संस्कार, जीवन, सन्तान, गर्भाधान, प्राणी

प्रस्तावना

मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन संस्कारों का क्षेत्र है। मानव जीवन की उन्नति में संस्कारों का विशेष रूप से महत्त्व है। मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति के लिए जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त भिन्न भिन्न समय पर संस्कारों की व्यवस्था प्राचीन ऋषि मुनियों ने बहुत ही सुन्दर ढंग से की है। 'संस्कार' शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु घञ् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है,और पाणिनि के "सम्पर्युपेभ्यः करोतौ भुषणे' सूत्र से अलंकार अर्थ में सुडागम होता है । इसके अनुसार संस्कार शब्द का अर्थ है- जिससे शरीर आदि सुभूषित हों, उन्हें संस्कार कहते हैं । अथवा भाव में घञ् प्रत्यय करके- "संस्करणं गुणान्तराधानं संस्कारः" अर्थात् अन्य गुणों के आधान को संस्कार कहते हैं । संस्कार शब्द के भिन्न संस्कार शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण किये गये हैं –"शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण,[1] शोभा, शुद्धि,[2] आभूषण,[3] स्मरणशक्ति पर प्रभाव[4], स्वरूप, धार्मिकविधान, विचार, भावना, धारणा" आदि । संस्कारों से ही मानव को द्विज बनने का अधिकार मिलता है ।

[1] निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक्। रघुवंश, ३.३५

[2] संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषतिश्च । कुमारसम्भव, १.२८

[3] स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते । शाकुन्तल,७.३३

[4] संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः । तर्कसंग्रह

मनु ने इस विषय में कहा है ।[5] ३।१।३ की व्याख्या में शबर ने संस्कार का अर्थ बताया है कि "संस्कारो नाम स भवति यस्मिन्नजाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य" अर्थात् संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है। तन्त्रवार्तिक के अनुसार "योग्यता चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते" अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ है जो योग्यता प्रदान करती है।

उद्देश्य - संस्कारों का उद्देश्य है संस्कृत जीवन का निर्माण।

महत्त्व - संस्कार मनुष्य के जीवन को एक निश्चित दिशा में परिष्कृत करने वाली धार्मिक क्रियायें है और ये वे क्रियायें हैं जो जीवन को उत्तम उद्देश्य से प्रेरित करते हैं। यद्यपि संस्कार किसी ना किसी रूप में सभी जातियों में हैं, तथापि हिन्दु में संस्कारों को एक अद्भूत श्रृङ्खला में रखा गया है। प्राचीन हिन्दु जीवन की रूपरेखा में हमें धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, स्मृतिग्रन्थों तथा वेदों में भी देखने को मिलता है।

संस्कारों की संख्या

शास्त्रीय दृष्टि से संस्कार गृह्यसूत्रों के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। वैखानस स्मार्तसूत्रों में गर्भाधान से विवाह पर्यन्त अष्टादश शारीर संस्कारों का वर्णन मिलता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में एकादश संस्कारों का उल्लेख मिलता है। पारस्कर, बौधायन और वाराह गृह्यसूत्रों में त्रयोदश एवं वैखानस में अष्टादश संस्कारों का उल्लेख मिलता है। गौतम स्मृति के अनुसार चालीस संस्कारों का परिगणन किया है।[6] अङ्गिरा की सूची में पच्चीस संस्कारों का उल्लेख है।[7] मनुके अनुसार तेरह यथार्थ संस्कार है।[8] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी केशान्त को छोडकर उन्हीं संस्कारों को मानते हैं। व्यास (१।१४।१५) ने सोलह संस्कारों को मानते है। परवर्ती स्मृतियों में सोलह संस्कारों की सूची मिलती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती की 'संस्कार विधि'[9] और पण्डित भीमसेन शर्मा की 'षोडश संस्कार विधि'[10] में सोलह संस्कारों का ही समावेश है। सम्मति सर्वाधिक लोकप्रिय संस्कार सोलह है। आधुनिकतम पद्धतियों में यह संख्या स्वीकृति प्राप्त की है।

१.गर्भाधान २.पुंसवन ३.सीमन्तोन्नयन ४.जातकर्म ५.नामकरण ६. निष्क्रमण ७.अन्नप्राशन ८.चूडाकर्म ९.कर्णवेध १०.विद्यारम्भ ११.उपनयन १२. वेदारम्भ १३. केशान्त १४.समावर्तन १५. विवाह १६. अन्त्येष्टि

सोलह संस्कारों में गर्भाधान संस्कार प्रथम संस्कार है। गर्भाधान संस्कार का वर्णन किया जा रहे है।

गर्भाधान संस्कार

वैखानस (१।१) ने गर्भाधान को पृथक संस्कार माना है। इसे निषेक भी कहा गया है (६।२) और उसका वर्णन ३।९ में है। गर्भाधान का वर्णन ३।१० में हुआ है। मनु (२।१६ एवं २६), याज्ञवल्क्य(१।१०-११), विष्णुधर्मसूत्र (२।३ एवं २७।१) ने निषेक को गर्भाधान के समान माना है। शांखायनगृह्यसूत्र (१।१८-१९), पारस्करगृह्यसूत्र (१।११) तथा आपस्तम्बगृह्यसूत्र (८।१०-११) के मत में चतुर्थी होम की क्रिया वैसे ही होती है, जो अन्यत्र गर्भाधान के लिए पाये जाते है। इनमें गर्भाधानसंस्कार के लिए पृथक वर्णन नहीं मिलता है। किन्तु बौधायनगृह्यसूत्र (४।६।१), काठकगृह्यसूत्र (३०।८), गौतम (८।१४) एवं याज्ञवल्क्य (१।११) में गर्भाधान शब्द का प्रयोग मिलता है।

जीवन संघर्षमयी है अन्त में मृत्यु ही विजयिनी बनती है। सभी प्राणी अन्त में काल के कबलित हो जाते हैं, परन्तु ईश्वर ने संतति का जो विधान दिया है उसमें जीवन पराजित होकर भी विजयी बन जाता है। जीवन के जो अणु वीर्य में निहित रहते हैं उनमें मानसिक अणु भी विद्यामान रहते हैं। शास्त्रकारों ने वीर्य को बीज माना है और स्त्री के रज को अथवा शोणित को क्षेत्र माना है। संतति प्रसव एक नहीं, दोनों के सम्मिलित से होता है। सृष्टि के मूल में भी दोनों तत्वों ऋत और सत्य के रूप में विद्यमान रहते हैं। सृष्टि का विकास ही इन्हीं दो तत्वों का क्रीडा क्षेत्र है। धर्मशास्त्र के अनुसार इसके साथ कोई अशुचिता का भाव नहीं लगा है। इसलिए अधिकांश गृह्यसूत्र गर्भाधान के साथ ही संस्कारों का वर्णन प्रारम्भ करते हैं।

"गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन्येन वा कर्मणा तद् गर्भाधानम्" गर्भ का धारण अर्थात् वीर्य का स्थापन, गर्भाशय में स्थिर करना जिस क्रिया से होता है उसे गर्भाधानसंस्कार कहते हैं। जिस क्रिया के द्वारा पुरुष स्त्री में अपना बीज स्थापित करता है उसे गर्भाधान कहता है।[11] जिस कर्म की पूर्ति में स्त्री (पति द्वारा) प्रदत्त शुक्र धारण करती है उसे गर्भालम्भन या गर्भाधान कहते हैं।[12] आचार्य वाग्भट के अनुसार शुद्ध शुक्र तथा शुद्ध आर्तव के संयोग होने पर अपने पूर्वजन्म कृत शुभ अशुभ कर्मों से प्रेरित सत्त्व अर्थात् जीव या जीवात्मा गर्भ का रूप धारण कर लेता है।[13] क्षेत्ररूप नारी और बीजरूप पुरूष होता है। इसलिए क्षेत्र और बीज दोनों के मिलने से ही सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पति होती है।[14] अथर्ववेद में कहा है- पुरूष में जो वीर्य होता है विवाह के बाद वह निश्चयपूर्वक स्त्री में गर्भाधान की क्रिया से सोचा जाता है और वही वीर्य फिर सन्तान की प्राप्ति कराने वाला होता है।[15] (चरक.शा.४।२)- वीर्य, रज तथा जीव इन तीनों के गर्भाशय में संयुक्त होने का नाम गर्भ है। इससे वीर्य के साथ ही जीव का प्रविष्ट होना प्रमाणित है। सुश्रुतसंहिता (३।३-४) में गर्भक्रान्ति को स्पष्ट करने के लिए धन्वन्तरि ने कहा है- शुक्र एवं शोणित दोनों पञ्चभूतात्मक होते हैं। शुक्र, शोणित एवं जीव से संयुक्त-मिश्रित पदार्थ का नाम 'बीज' है। इसी से शरीर का निर्माण होता है। स्त्री और पुरूष के संयोग के समय वायु शरीर से तेज (उष्णिमा) को उत्पन्न करती हैं। यह तेज वायु के साथ मिलकर शुक्र को क्षरित करता है। क्षरित शुक्र शरीर सब अवयवों को साथ लेकर योनि में पहुँचता है। वहाँ आर्तव के साथ मिल जाता है। इसके पश्चात् आग्नेय तथा सोम गुण के सम्बन्ध से बनता गर्भाधान में पहुँचता है। इस शुक्र के साथ ही जीवात्मा भी अवतरित होती है। शुक्र के साथ पौरूषग्रन्थि तथा अन्य ग्रन्थियों

[5] वैदिकै: कर्मभि: पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य: शरीरसंस्कार: पावन: प्रेत्य चेह च ॥ मनुस्मृति, २.२६

[6] ८.२.

[7] वी.सं.भा.१ में उद्धृत

[8] मनुस्मृति, २.१६,२६,२९; ३-१-४

[9] वैदिक यन्त्रालय, अजमेर से प्रकाशित

[10] ब्रह्मा प्रेस,इटावा से प्रकाशित

[11] गर्भ: संधार्यते येन कर्मणा तद् गर्भाधानमित्यनुगतार्थं कर्मनामधेयम् । पूर्वमीमांसा, अध्याय १,पाद ४,अधि.२,वी.मि,सं

[12] निषिक्तो यत्प्रयोगेण गर्भ: संधार्यते स्त्रिया ।
तद् गर्भालम्भनं नाम कर्म प्रोक्तं मनीषिभि: ॥ वी.मि.सं.

[13] शुद्धे शुक्रार्तवे सत्त्व: स्वकर्मक्लेशचोदित:। गर्भ: सम्पद्यते युक्तिवशादग्निरिवारणौ ॥ शारीरस्थान, प्रथम अध्याय,१, अष्टाङ्गहृदयम्

[14] क्षेत्रभूता समा नारी बीजभूत: स्मृत: पुमान्। क्षेत्रबीजसमायोगात् सम्भव: सर्वदेहिनाम्॥ मनु० ९।३३

[15] पुंसि रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते। तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत्॥ अ.वे.६।११।२

के स्राव मिले रहते हैं। यह शुक्र डिम्ब के साथ मिलकर गर्भ बनाता है।[16] शुक्र सौम्य (सोमगुणभूयिष्ट) है और आर्तव आग्नेय (अग्निगुणबहुल) है।

प्रश्नोपनिषद (प्रश्न १।३-४) में बताया है-कत्य के पुत्र कबन्धी ने पिप्पलाद ऋषि से पूछा- सृष्टि के आरम्भ में प्रजा किससे उत्पन्न होती है? ऋषि उत्तर देता है- प्रजापति ने तप किया, तत्पश्चात् 'स् मिथुनमुत्पादते' उसने मिथुनजोडे को उत्पन्न किया। मिथुन है रयि और प्राण। सूर्य तथा चन्द्र प्राण तथा रयि है। प्राण धन शक्ति (Positive) है, रयि ऋण-शक्ति (Negative) है। इन्हीं के संयोग से विविध प्रकार की सृष्टि होती है। सृष्टि में अनेकता (Multiplicity) है। यह अनेकता द्वित्त्व (Duality) के बिना नहीं हो सकती।

बच्चा पहले पिता के गर्भ में विकास पाता है, फिर माता के गर्भ में, पिता के शरीर का वीर्य कोश पुत्र का गर्भाशय है। यही भावी सन्तान का पहला शरीर है। इसलिए वह जिस प्रकार का भोजन करेगा उसी प्रकार का शरीर तैयार होगा। भौतिक शरीर पर पिता के मन का भी प्रभाव पड़ता है। पिता के हृदय की सारी भावनाएं साररूप में वीर्य के उस कण में होती है, जिसे जीव ने अपना पहला शरीर बनाया है। इसी को आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में स्पर्मेटोजा (Spermatoza) कहते हैं। इस प्रकार गर्भाधान का सूत्रपात स्त्रीसंयोग से पहले पिता के शरीर में हो चुका होता है। इसलिये जिस प्रकार सन्तान की उसे इच्छा है, उसी प्रकार का आचरण होना चाहिए। ऐतरेय उपनिषद का कथन है- गर्भ पहले पुरूष के शरीर में होता है, वीर्य ही उसका शरीर है। पिता के समस्त अङ्ग से तेज को खिचता है अपने में धारण करता है। फिर पिता के गर्भ से गर्भाधान द्वारा माता के गर्भ में जाता है।[17] सन्तान का जन्म माता से होता है, इसलिए उसकी एक संज्ञा 'जाया' है।[18] जाया शब्द 'जनी प्रादुर्भावे' धातु से जनेर्यक् (उणादि० ४।१११) सूत्र से यक् प्रत्यय स्त्रीलिंग में टाप् प्रत्यय से सिद्ध होता है।

उद्देश्य

गर्भाधान संस्कार सृष्टि का मूल है। इसका सामाजिक उद्देश्य है मानव का कुल तथा वंश आगे चलता रहे, यदि संतति उत्पन्न न होगी तो कुल समाज का विस्तार कैसे होगा? सृष्टि की प्रक्रिया ही नष्ट हो जाएगी, सृष्टि की प्रक्रिया को बनाए रखने के लिए गर्भाधान संस्कार आवश्यक है। सांस्कृतिक विकास के लिए आवश्यक है कि समाज में जिस सन्तान की अभिवृद्धि हुई है, यह किन संस्कारों को लेकर हुई है, यदि संस्कार शुद्ध और पवित्र हो तो समाज भी पवित्र और शुद्ध होगा। गर्भसम्बन्धी हवन संस्कारों के द्वारा द्विजों के गर्भ एवं वीर्य सम्बन्धी दोष दूर हो जाते है।[19] जिस प्रकार बीज और क्षेत्र उत्तम होने से अन्नादि भी उत्तम होते हैं। उसी प्रकार उत्तम बलवान स्त्री पुरूषों से सन्तान भी उत्तम होती है। बीज चाहे जितना अच्छा हो अनुर्वर क्षेत्र में पड़कर फलप्रद नहीं होगा। इसी प्रकार क्षेत्र अच्छा हो, बीज निकम्मा है तो भी सुफल नहीं होगा। इसलिए बीज और क्षेत्र दोनों अच्छा होना जरूरी है।

वैदिक काल

वैदिककाल में हम सन्तान के लिए प्रार्थना आदि के वचनों में पिता माता की प्रवृति की अभिव्यक्ति देखते हैं।[20] इसके अतिरिक्त वैदिक मन्त्रों में गर्भाधान से जुड़े बहुत से प्रसंग और उपमाएँ हैं।[21] वैदिककाल में गर्भाधारण की ओर इङ्गित करने वाली अनेक प्रार्थनाएँ वेदों से प्राप्त होती हैं।[22] अथर्ववेद में ऐसे अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं।[23] अथर्ववेद में एक मन्त्र में स्त्री को पर्यङ्क पर आने के लिए निमन्त्रण का उल्लेख है- 'प्रसन्नचित्त होकर शय्या पर आरुढ हो, मुझ अपने पति के लिए सन्तति उत्पन्न करो'।[24] प्राक् सूत्र साहित्य में सहवास का भी स्पष्ट विवरण मिलता है।[25] बृहदारण्यकोपनिषद् में भी गर्भाधान के मन्त्र प्राप्त होते है।[26] इस प्रकार वेदों में भी अनेक प्रकार के मन्त्र प्राप्त होते हैं, इससे ज्ञात होता है कि गर्भाधान संस्कार वैदिक काल में भी प्रचलित था। गृह्यसूत्रों के पूर्व ही वेदों में लेखबद्ध था।

गर्भाधान के लिए उपयुक्त आयु

पूर्ण युवावस्था यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास के अनन्तर न्यून सोलह (१६) वर्ष की कन्या और पच्चीस (२५) वर्ष का पुरूष अवश्य हो, और इससे अधिक वर्ष होने से उत्तमता अधिक होती है। क्योंकि विना १६ वर्ष के गर्भाशय में सन्तान को यथावत् बढ़ने के लिए अवकाश और गर्भ के धारण पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता और २५ वर्ष के विना पुरूष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता है। इस विषय में आचार्य वाग्भट्ट ने भी कहा है सोलह बर्ष की स्त्री बीस बर्ष के पुरूष विवाह योग्य होते हैं।[27] इसमें यह प्रमाण है -

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्॥१॥[28]
ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥२॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥३॥[29]

इस प्रकार किस किस वर्ष में कौन कौन धातु किस किस प्रकार का कच्चा या पक्का, वृद्धि या क्षय को प्राप्त होता है, यह सब वैद्यक शास्त्र में उल्लिखित है। इसलिए गर्भाधान आदि संस्कारों को करने के लिए वैद्यक शास्त्रों का आश्रय विशेष रूप से लेना चाहिए। सोलह वर्ष की न्यून अवस्था की कन्या और पच्चीस बर्ष के न्यून अवस्था का पुरूष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ में हि विनष्ट

---

[16] सौम्यं शुक्रमार्त्तवमाग्नेयमितरेषामप्यत्र भूतानां सान्निध्यमस्त्यगुणा विशेषेण, परस्परोपकारात् (परस्परानुग्रहात्) परस्परानुप्रवेशाच्च॥ सुश्रुत. शा.३।३

[17] पुरुषे हवा अयमादितो गर्भो भवति। यदेतद्रसस्तदेतत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूत मात्मन्मेवात्मानं बिभर्ति। तद्यथा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म॥ ऐतरेय उपनिषद्

[18] पतिर्भाया सम्प्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते। जायायास्त्द्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥ मनुस्मृति, १।८

[19] गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिवन्धनैः।
बैजिक गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥मनुस्मृति, २।२७

[20] प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्। ऋग्वेद, ८.३५.१०
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति। वही,१.८९.९

[21] अथर्ववेद,६.९.९.२

[22] ऋग्वेद, १०.१८४

[23] शमीमश्वत्थमारुढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वाभरामसि ॥ आदि, अथर्ववेद, ६.९

[24] अथर्ववेद, १४.२.२

[25] तां पूषन् शिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति।
या न ऊरु उशती विश्रायते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्॥ ऋग्वेद,१०.८५.३७

[26] अथ यामिच्छेद। गर्भ दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखं सन्धायापान्याभिप्राण्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदधामीति गर्भिण्येव भवति। बृहदारण्यकोपनिषद्। ६.४.१०

[27] पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन सङ्गता। शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि॥ शारीरस्थान, प्रथमाध्याय, ८, अष्टाङ्गहृदयम्

[28] सुश्रुते सूत्रस्थाने। अ.३५.

[29] सुश्रुते शारीरस्थाने। अ.१०

हो जाता है और उत्पन्न भी होता है तो कम आयु तक ही जीवित रह पाता है या दुर्बल शरीर वाला होता है।[30] इसलिए कम उम्र में विवाह संस्कार कभी नहीं करना चाहिए। उत्तम सन्तान, दीर्घायु, निरोग सन्तान के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करके उचित समय में विवाह करना चाहिए। मनुस्मृति में पुरूष की ३० वर्ष की आयु, अष्टाङ्गसंग्रह में २१ वर्ष और शार्ङ्गधर ने २० वर्ष को विवाह योग्य उम्र माना है। स्त्री की उम्र प्राय: १६ वर्ष सभी ने स्वीकार की है। विवाह एवं गर्भाधान की आयु के सन्दर्भ में अहमदाबाद में प्रकाशित "Times of india" के ९ फरवरी १९९० के अंक में दिया यह विवरण द्रष्टव्य है-

Cochin- Dr. Raj Choudhary, Director of Chitranjan National Cancer Research Institute, Calcutta, delivering the platinum jubilee lecture, of the medical and varerinary sciences section of the Indian sciences congress, said- girls married before the age of sixteen were found to develop cancer of cevix more. Also, the mother of six children has twice as much chance of suffering from this cancer than a mother of one.

गर्भाधान के लिए प्रस्तुति

यूरोप आदि देशों में पाया गया है कि जो बच्चे अगस्त से अक्टूबर के बीच पैदा हुए, उनमें से अनेक विकृति बुद्धि वाले,स्वल्पजीवी हुए। परीक्षण से पता चला है कि उन देशों में नवम्बर से जनवरी के बीच शीताधिक्य के कारण मदिरापान अधिक होता है। परिणामत: इस अवधि में गर्भ में आयें बालक विविध रोगों से ग्रस्त होते हैं। इसलिए गर्भाधान के बहुत पहले माता पिता के खान पान का शुद्ध, सात्त्विक, आरोग्यवर्धक होना आवश्यक है। अत: प्राचीन काल से ऋषियों ने इस काम के लिए १३ दिन पहले से ही तैयारी करने का आदेश दिया है। जिस रात्रि में गर्भाधान करने का निश्चय होता था उससे पहले दिन यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को करने का विधान दिया है।

सूत्रकाल

विवाह के उपरान्त ऋतुस्नान से शुद्ध पत्नी के समीप पति को जाना होता था। गर्भाधान के पूर्व उसे विभिन्न प्रकार के पुत्रों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, अनुचान, ऋषिकल्प, भ्रूण, ऋषि और देव की इच्छा के लिए व्रत का अनुष्ठान करना होता था।[31] व्रत समाप्ति पर अग्नि में पकवान की आहुति दी जाती थी । तदुपरान्त सहवास के हेतु पति पत्नी को प्रस्तुत किया जाता था । पति प्रकृति सृजन सम्बन्धी गर्भाधारण में पत्नी को देवों की सहायता के लिए स्तुतिमयी वेदवाणी का उच्चारण करता था ।[32] आलिङ्गन के उपरान्त पूजा की स्तुति करते हुए और विकीर्ण बीज को उत्पन्न करते हुए गर्भाधान होता था ।[33] पुन: पुरूष और स्त्री के सहवास के विषय में उपमा रूपक युक्त मन्त्र का उच्चारण तथा अपनी प्रजननशक्ति का वर्णन करता था और नर नारियों के सहकार्यों के रूपकों से युक्त वैदिक ऋचाओं का गान करते हुए अपने शरीर को मलता था ।[34] पति पत्नी के हृदय का स्पर्श करता था और पत्नी का सुन्दर वर्णन करता था ।[35] भारद्वाजगृह्यसूत्र(१।२०) में आया है कि रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नानोपरान्त श्वेत वस्त्र धारण कर और आभूषण पहने योग्य ब्राह्मणों से बातें करें। वैखानस (३।९) में लिखा है कि वह अङ्गराग लेप करें । किसी नारी या शुद्र से बातें ना करें। अपने पति को छोडकर अन्य को ना देखें क्योंकि स्नानोपरान्त वह जिसे देखेगी उसी के समान उसकी सन्तान होगी। यही बात शङ्ख-लिखित में भी पाई जाती है ।

धर्मशास्त्र-स्मृति एवं परवर्ती साहित्य

धर्मशास्त्र, स्मृतियाँ इस संसार के कर्मकाण्डीय पक्ष में कुछ काल योग का निर्धारण किया है । वस्तुत: कुछ नियम का निर्धारण किया है- गर्भाधान कब हो, स्वीकृत और निषिद्ध रात्रियाँ, नक्षत्र सम्बन्धी विचार, आवश्यक कर्तव्य इसके अपवाद, संस्कार को सम्पन्न करने वाली रात्रियाँ इत्यादि । केवल याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, और शातापत आदि कतिपय स्मृतियाँ पति के लिए सहवासोपरान्त स्नान करने का विधान है।[36]

उपयुक्त समय

इस संस्कार को सम्पन्न करने के लिए आचार्यों ने समय का निर्धारण किया है। इस विषय पर सभी धर्मशास्त्र एकमत है यह संस्कार तभी हो जब पत्नी गर्भाधारण के लिये शारीरिक रूप से समर्थ हो, अर्थात् ऋतुकाल में पत्नी के ऋतुस्नान की चौथी रात्री से सोलहवीं रात्रि तक का समय गर्भाधारण के लिये उपयुक्त माना गया है।[37] गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों का बहुमत सांसारिक दृष्टि से चतुर्थ रात्रि को गर्भाधान के लिए शुद्ध मानता है । किन्तु गोभिल गृह्यसूत्र अधिक विवेचना पूर्वक व्यक्त करता है।[38] इसके अनुसार गर्भाधान तभी होना चाहिए जब अशुद्ध रक्त प्रवाह रुक जाए । चौथी रात्रि के पूर्व स्त्री अस्पृश्य मानी जाती थी और उसके समीप जाने वाला व्यक्ति दूषित और गर्भपात (अकाल उत्पति) के लिए दोषी; शुक्र व्यर्थ में ही नष्ट हो जाता है ।[39] प्रथम चार रात्रि समागम करना मना है चार रात्रियाँ समागम करना व्यर्थ है तथा महारोग का कारण है। आचार्य वाग्भट के अनुसार प्रथम तीन रात्रि सहवास करने के लिये निन्दित है । वाग्भट ने 'पूर्वास्तिस्त्रोऽत्र निन्दिता:' कहकर ३+१२=१५ दिन का ऋतुकाल स्वीकार किया है । मनु ने सोलह दिनों का ऋतुकाल माना है ।[40] महर्षि हारीत ने भी 'षोडशदिवसा ऋतुकाल:' कहा है । आपस्तम्बगृह्यसूत्र एवं हारीत के अनुसार चौथी रात गर्भाधान के लिए उपयुक्त है । कात्यायन, पराशर (७।१७) मत में रजस्वला चौथी दिन स्नान करके विमल होती है । आचार्य मनु (३।४७) एवं याज्ञवल्क्य (१।७९) ने प्रथम चार रात्रि सहवास के लिए निन्दित माना है । लघु आश्वलायन (३।१) के अनुसार चौथे दिन के उपरान्त रक्त के प्रथम प्रकटीकरण पर गर्भाधान संस्कार करना चाहिए । भावप्रकाश में भी सोलह दिनों का ऋतुकाल माना है, एवं इसी समय को गर्भाधान के लिए उपयुक्त समय माना है ।[41] गर्भाधान के लिए केवल रात्रिकाल ही विहित था दिन का समय निषिद्ध था । इसका कारण दिया गया है कि दिन में संभोग करने वाले पुरूष का प्राणवायु अधिक तेज चलने लगता है। दिन में संभोग नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे अभाग्यशाली शक्तिहीन और अल्पायु वाले सन्तति

---

[30] चतस्रोऽवस्था: शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित् परिऽहाणिश्चेति। आषोडशाद्वृद्धिराचतुर्विंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशत: सम्पूर्णता तत: किञ्चित्परिहाणिश्चेति॥

[31] बौ.गृ.सू. १.७.१-१८

[32] वहीं, १.७.३७-४१

[33] वहीं, १.७.४४

[34] अथैनां परिष्वजति-अहमस्मि सा त्वं द्यौरहं पृथ्वी त्वं रेतोऽहं रेतोभृत त्वम्। आदि, वहीं १.७.४२

[35] पा.गृ.सू., १.१२.९

[36] ऋतौ तु गर्भशङ्कित्वात्स्नानं मैथुनिन: स्मृतम्।
याज्ञवल्क्य और आपस्तम्ब।
उभावप्यशुची स्यातां दम्पती शयनं गतौ।
शयनादुत्थिता नारी शुचि: स्यादशुचि: पुमान्॥ शातापत,गदाधर द्वारा पा.गृ.सू.,१.११ पर उद्धृत

[37] म.स्मृ.,३.२,याज्ञ.स्मृ.,१.७९

[38] विरुजा यास्तस्मिन्नेव दिवा । २.५

[39] व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात। आश्वलायन,वी.मि.सं.,भाग १ में उद्धृत।

[40] मनुस्मृति. ३.४६

[41] आर्तवस्त्रावदिवसाद् ऋतु: षोडशरात्रय: । गर्भग्रहणयोग्यस्तु स एव समय: स्मृत: ॥ (भावप्रकाश-गर्भप्रकरण)

उत्पन्न होती हैं ।[42] स्त्रियों को समस्त साधनों से सन्तुष्ट और रक्षित रखना चाहिए जिससे कि वह पथभ्रष्ट ना हो जाये।[43] जिस प्रकार प्रथम चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित है उसी प्रकार ग्यारहवीं और तेहरवीं रात्रि भी निन्दित है, वाकि दश रात्रि ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं । सुश्रुत ने कहा है युग्म दिनों में मैथुन करने से पुत्र और अयुग्म दिनों में मैथुन करने से पुत्री होती है ।[44] चरक ने भी कहा है ।[45] जिन को पुत्र की इच्छा हो, वे छठी, आठवीं, दशमीं, बाहरवीं, चौदहवीं और सोलहवीं ये छः रात्रि ऋतुदान में उत्तम, परन्तु इनमें भी उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है ।[46] जिनको कन्या की इच्छा हो वे पांचवीं, सातवीं, नववीं और पन्द्रहवीं ये चार रात्रि उत्तम हैं । इससे पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे कन्यार्थी के लिए विषम रात्रि[47]। युग्म रात्रि में सहवास करने से पुत्र और अयुग्म रात्रि में पुत्री होती है, इसका कारण स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सामान्यत: महिला में डिम्बक्षरण अर्थात् डिम्बग्रन्थि (Ovary) से डिम्ब का निकास, दूसरा महावारी प्रारम्भ होने के १४ दिन पूर्व से होता है । डिम्ब ग्रन्थि से डिम्बरक्षण के बाद उसे फैलोपी नली (Fallopion Tube) में यथा स्थान आकर स्थित होने में ४८ घण्टे लगते है और १२ घण्टे तक यह यहाँ शुक्राणु की प्रतीक्षा में रहता है । इस अवधि में यदि इसका शुक्राणु से मिलन न हो सके और यह संषेचित (Fertilise) न हो सके तो क्षतिग्रस्थ हो जाता है । महिला के डिम्ब में व पुरूष के शुक्राणु में क्रमश: २३-२३ जोडे गुण-सूत्र (Chromosomes) होते है जिनमें २२ जोडे तो समान – आटोसोम्स (Autosomes) के होते है जो सन्तान में माता पिता के पैतृक संस्कार प्रसारित करते है तथा २३ वाँ जोड़ा लैङ्गिक होता है जो सन्तान का लिङ्ग निर्धारण करता है ।महिला डिम्ब में गुण सूत्र समान X-X किस्म के होते हैं पर पुरूष शुक्राणु में X व Y किस्म के होते है । X व Y गुणसूत्र के शुक्राणु वीर्य में लगभग बराबर की संख्या में ही होती है । जब डिम्ब में X गुण-सूत्र के शुक्राणु का मिलन होता है तो पुत्री और Y गुण-सूत्र के शुक्राणु का मिलन होता है तो पुत्र गर्भ ठहरता है । इस सिद्धान्त को रेखाचित्र से समझा जा सकता है-

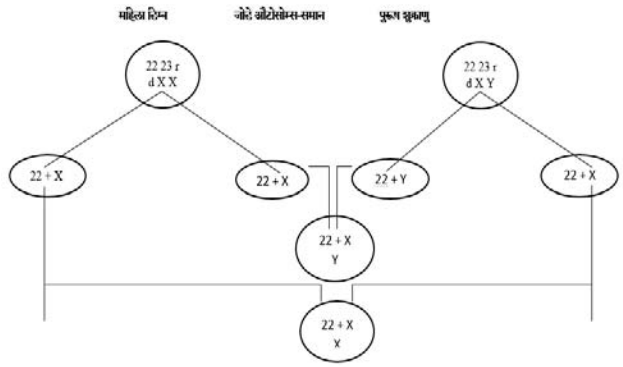

अब देखना ये है (X+Y) या (X+X) का स्वेच्छा मिलन कैसे सम्भव है । Y गुण-सूत्र के शुक्राणु हल्के, चुस्त व तेज गति का होता है पर अधिक सक्षम नहीं होते ; १२ गण्टे तक जीवित रह पाते हैं, इस अवधि में इन्हें डिम्ब पहुंच जाना चाहिए। विपरीत X गुण-सूत्र के शुक्राणु भारी, सुस्त व धीमी गति के और अधिक सक्षम होते हैं । १२ घण्टे के बाद भी जीवित रह पाते हैं, ये धीमी गति से आगे बढ़ते हुए १२ घण्टे के बाद भी डिम्ब में संषेचित कर पाते हैं । चूँकि पुत्र उत्पति के लिए Y गुण सूत्र के शुक्राणु डिम्ब तक पहले पहुंचे और संषेचित करें, अत: गर्भाधान ४८ घण्टे के बाद दूसरी रात्रि अर्थात् युग्म रात्रि में ही हो, जिससे डिम्ब स्थिति के १२ घण्टे के अन्दर अन्दर ही Y शुक्राणु X शुक्राणुओं से पहले डिम्ब तक पहुँच सके । यदि ऐसा न होकर गर्भाधान डिम्ब रक्षण के २४ घण्टे बाद ही अर्थात् पहले ही दिन की अयुग्म रात्रि में होता है तो, चूंकि डिम्ब तब तक फैलोपी नली में स्थित नहीं हो पाता है १२ घण्टे प्रतीक्षा के बाद नष्ट हो जाते है और X शुक्राणु बन आते हैं । वे धीमी गति से बढ़ते हुए डिम्ब के स्थित होने तक उसके पास पहुंच जाते हैं और उसे संषेचित कर पाते हैं, इस अवस्था में पुत्री गर्भ में रहती हैं । डिम्ब में केवल एक ही शुक्राणु जो पहले उस तक पहुंच जाता है- शेष नहीं, क्योंकि संषेचित होते ही डिम्ब एक ऐसा पदार्थ निकालता है जो उसके चारों ओर तुरन्त ही अप्रवेश्य झिल्ली बना देता है जिससे अन्य कोई शुक्राणु उसमें प्रवेश ना कर पाये। ये पुत्र पुत्री उत्पति का वैज्ञानिक आधार है जिसका सदियों पूर्व के आचार्यों ने निर्देश किया है। इस विषय पर आधुनिक चिकित्साशास्त्रियों ने स्वीकार कर मान्यता प्रदान की है, हिन्दुस्तान टाइम्स के ३० जून १९८९ के अंक में प्रकाशित इस समाचार से प्रमाणित होता है-

BOSTON, JUNE 29 – The odds of having a baby boy instead of a girl increase greatly if couples conceive their child late in the woman's menstrual cycle, a study show. The research disclosed that when couples have sex two days after ovulation, which occurs midway in the monthly cycle, two thirds are boys.

The research answers a question that has puzzled philosophers and physicians for centuries whether the time of intercourse affects the sex of the child.

"The study provides strong confirmation for the theory that variations in sex proportion are associated with conceptions occurring on different day of menstrual cycles", the report said. The study was conducted by Susan Harlapp at the Hebrem University Jerusalam and was published in Thursday's New England Journal of medicine.

The study examined 3656 infants born to women who said they conceived on the five days around ovulation, overall, 53% of the babies were boys but of the 145 women who said they became pregnant two days after ovulation, 66% of the children were boys – Hindustan Times, Delhi, 30.06.89.

अग्निवेशगृह्यसूत्र में लिखा है- १६वीं रात्रि में स्त्री से समागम करने से ब्रह्मकीर्तन जैसा पुत्र मिलता है ।[48] पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्तव होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष व बन्ध्या स्त्री क्षीण और अल्पवीर्य होने से गर्भ का न रह कर गिर जाना होता है ।[49] इस विषय में वाग्भट ने भी कहा है, शुक्रधातु की अधिकता से पुरुष की उत्पत्ति, रक्त (आर्तव) की

[42] प्राणा वा एते स्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते।
ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥ प्रश्नोपनिषद्.१.१३
नार्तवे दिवा मैथुनमर्जयेदल्पभाग्या: अल्पवीर्याश्च दिवा प्रसुयन्तेऽल्पायुश्चेति। आर्थवणिक श्रुति। वी.मि.सं,भाग १ में उद्धृत

[43] यस्तात्तस्मात्स्त्रिय: सेव्या: कर्तव्याश्च सुरक्षिता: । मनुस्मृति

[44] युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्ता दिवसेष्वन्यथाऽवला । पुष्पकाले शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत् ॥ सुश्रुत. शारीर. ३.९२

[45] स्नानात् प्रभृतियुग्मेष्वह: सुसंवसेतां पुत्रकामौ तौ चायुग्मेष दुहितृकामौ॥ च. सं. (शारीरस्थान ८।६)

[46] तत्राप्युत्तरोत्तरा: प्रशस्ता: । आप.ध.सू.,२.१

[47] युग्मासु पुत्रा: जायते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिसु ।
युग्मास्वापस्तम्बवचनात् उत्तरोत्तरा प्रशस्ता: ग्राह्या:। मनुस्मृति.,३.४८

[48] षोडश्यां लभतेपुत्रं ब्रह्मकीर्तनतादृशं तदुर्ध्वमुपयं नास्ति कामभोगैव केवलम् ॥ अग्निवेशगृह्यसूत्र,२.७.६

[49] पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रिया: ।
समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्यय:। मनुस्मृति, ३.४९

अधिकता से स्त्री की और समानता होने से क्लीव गर्भ की उत्पति होती है ।[50] चतुर्थ रात्रि से लेकर सोलह रात्रि तक किस प्रकार सन्तान उत्पन्न होता है इसका विवरण व्यासस्मृति में दिया गया है।

रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्र: स्यात् अल्पायुर्धनवर्जित: ।
पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यम: ।
सप्तम्यामप्रजा जाया अष्टम्यामीश्वर: सुत: ।
नवम्यां शुभगा: दारा: दशम्यां प्रवर: पुमान् ।
एकादश्यामधन्या स्त्री द्वादश्यां पुरुषो भवेत् ।
त्रयोदश्यां सुता तस्य वर्णसंकरकारिणी ।
धर्मध्वज: कृतज्ञ: स्यात् आत्मवेदी दृढव्रत: ।
प्रश्रय: सर्वभूतानां षोडश्यां जायते पुमान् ।[51]

सायं व प्रात: प्रदोषवेला में गर्भाधान करना सर्वथा निषिद्ध है । उस समय गर्भाधान करने से नेत्र-ज्योति क्षीण होती है बल घटता है, इसलिए गर्भाधान के लिए भोजन के लगभग ढाई घण्टे बाद रात्रि के १० बजे से लेकर प्रात: ४ बजे तक का समय उपयुक्त है।

निषिद्ध समय

गर्भाधान के लिए जिस प्रकार आचार्यों ने उपयुक्त समय का वर्णन किया है, उसी प्रकार कुछ निषिद्ध तिथियाँ तथा वर्जित समय का भी वर्णन किया गया है। पुराणों में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है। गर्भाधान के लिए उन सोलह रात्रियों में भी पौर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी वा अष्टमी इनमें रतिक्रिया कभी नहीं करनी चाहिए। ३०वीं और सम्पूर्ण पर्व में विशेषतया गर्भाधान नहीं करना चाहिए ।[52] विष्णुपुराण में इन रात्रियों को निन्दित बताया गया है ।[53]
मनु ने ११वें और १३वें दिन को भी निषेध किया है।[54] पाश्चात्य डाक्टर सहस्रों परीक्षणों के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचे कि ११ वीं और १३वीं की गर्भस्थिति की आशा बहुत कम होती है । ऐसी अवस्था में समागम करने से वीर्य व्यर्थ हो जाता है । दिन में गर्भाधान संस्कार नहीं करना चाहिए। इस विषय में शिवरहस्य कहा गया है-

दिवा जन्मदिने चैव न कुर्यान्मैथुनं व्रतम्।
श्राद्धं दत्त्वा भुक्त्वा च श्रेयोऽर्थान्न च पर्वसु ।

वराहपुराण में इस विषय में कहा गया है-

षष्ठ्यष्टमी अमावस्या उभे पक्षे चतुर्दशी ।
मैथुनन्नव सेवेते द्वादशी च मम प्रियाम् ।

तथा;

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां षष्ठ्यां द्वादश्यान्तथा ।
अमावस्याञ्चतुर्थ्यां च मैथुनं यो हि गच्छति,
तिर्यग्योनिं हि गच्छेत् समालोकं न गच्छति ।

सौरपुराण में भी चतुर्दशी पर्वाष्टमी के दिन गर्भाधान के लिए निषेध किया गया है ।[55] प्राचीनकाल से ही हिन्दु ज्योतिष और नक्षत्र विद्या से पूर्णतया परिचित थे। पूर्णिमा आदि में स्त्री समागम निषेध किया गया है। सूर्य और चन्द्र के मार्ग को निश्चित कर सकते थे तो उन्हें पहले से ही ज्ञात रहा होगा कि विभिन्न तिथियों में उनका संगम योग विभिन्न विकृतियाँ उत्पन्न कर देता है। चन्द्रमा के आकर्षण के कारण और जल तत्वों की वृद्धि के कारण पृथ्वी के भौतिक दशा पर्व तिथियों पर विकृति हो जाती है, चन्द्रमा का प्रभाव स्त्रियों पर अधिक पडता है। उक्त तिथियों में स्त्री पुरुष की वीर्य आदि धातुएँ विषम होती हैं, यदि इन पर्वों की रात्रि में स्त्री पुरुष संभोग करे तो वैषम्यापन्न शुक्र शोणित विकृत होकर स्वास्थ्य में विकार उत्पन्न करता है । इस अवसर पर गर्भस्थिति हो तो तज्जन्य सन्तान रक्तविकार, हृदयदोष, प्राणशक्ति में दुर्बलता आदि रोगों से ग्रस्त हो सकते हैं। इसलिए इस विचार की आवश्यक मान्यता समझी गई है कि गर्भाधान जैसे मुख्य कर्म उन तिथियों में नहीं किया जाना चाहिए। याज्ञवल्क्य (१।८०) में ज्योतिष सम्बन्धी विस्तार भी दिया है, यथा मूल एवं मघा नक्षत्र में भी संभोग नहीं करना चाहिए । मनु के अनुसार जो निषिद्ध रात्रियों में स्त्री के समीप नहीं जाता है अवशिष्ट रात्रियों में जाता है वह संसार धर्म का पालन करते हुए भी ब्रह्मचारी ही रहता है एवं ब्रह्मचर्य का फल प्राप्त करता है ।[56]

गर्भाधान में आवश्यक कर्तव्य

गर्भाधान करते समय तथा गर्भाधान करने के पूर्व कुछ विधि विधान का उल्लेख प्राप्त होता है । पारस्कर गृह्यसूत्र, गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्र में विधान है कि चौथे दिन के उपरान्त पाँचवें दिन स्नान करके रजरोग रहित होकर जिस रात्रि में गर्भ स्थापन की इच्छा हो उससे पूर्व दिन में सुगन्धादि पदार्थों सहित पति पत्नी सहित मन्त्रों का उच्चारण करके अग्नि में आहुति देनी चाहिए ।[57] गोभिल गृह्यसूत्र में कहा गया है कि जिस दिन गर्भाधान किया जाता है उस दिन प्रात: काल ब्राह्मण की आज्ञा से गणेश की पूजा कर आभ्युदयिक श्राद्ध कृत्य सम्पन्न करें ।[58] देश काल आदि का स्मरण करें- "प्रति गर्भ संस्कारा यास्तामुत्पत्स्यमाना पत्यबीजगर्भसमुद्भवपापनिवृत्त्यर्थमिमां धर्म्मपत्नीं गर्भाधानकर्मणा संस्करिष्यामि।"
वाक्य को योजना कर संकल्प करें । रात्रि में पत्नी शुद्ध वस्त्र परिधान करके प्रसन्न चित होकर शय्या पर जाय । पति और पत्नी दोनों को शारीरिक एवं मानसिक रूप से सम्पूर्ण स्वस्थ आरोग्य अवस्था में होना जरुरी है । क्योकि अस्वस्थ अवस्था में गर्भाधारण कभी नहीं करना चाहिए । इससे स्वस्थ सबल सन्तति का उत्पन्न नहीं होते है । गर्भाधान के विषय में आचार्य वाग्भट का मत है - शुद्धशुक्रार्तवं स्वस्थं संरक्तं मिथुनं मिथ: ॥[59] आचार्य वाग्भट के अनुसार स्त्री

[50] अत एव शुक्रस्य बाहुल्याज्जायते पुमान्। रक्तस्य स्त्री, तयो साम्ये क्लीव:॥ शारीरस्थान, प्रथमाध्याय,५, अष्टाङ्गहृदयम्
[51] व्यास,वी.मि.सं.भाग १ में उद्धृत।
[52] पर्ववर्ज व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया । मनुस्मृति, ३.४५, याज्ञ.१.७९
[53] पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ।
तैलस्त्रीमांसभोगी पर्वस्वेतेषु य: पुमान्।
विण्मुत्रभोजनं नाम नरकं प्रतिपद्यते ॥ विष्णुपुराण, वी.मि.सं० भाग १ में उद्धृत
[54] तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रय: ॥ मनुस्मृति, ३.४७
[55] षष्ठ्यष्टमी पञ्चदशी अमावस्या चतुर्दशी ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं जन्मर्क्षे च विशेषत: ॥ सौरपुराण
[56] निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ३।.५०. मनुस्मृति
[57] अथ गर्भाधान स्त्रिया: पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वस्नात्वा विरुजायास्तस्मिन्नेव दिवा 'आदित्यं गर्भमिति' ॥ पारस्कर गृह्यसूत्र
[58] गर्भाधानदिने प्रातगर्भाधानकर्माङ्गाम्युदयिकश्राद्धं वक्ष्यमाणविधिना कुर्य्यात् ॥ गोभिल गृह्यसूत्र
[59] शारीरस्थान,प्रथमाध्याय, १८, अष्टाङ्गहृदयम्

पुरुष जिस प्रकार के पुत्र अथवा पुत्री की चाहना करें, उस प्रकार की रुपों, चरित्रों, देशों तथा जनपदों का मन में चिन्तन करें; सम्भव हो तो भ्रमण करें, देखें और उसी प्रकार के आहार विहार एवं वेश भूषा का धारण करें ।[60] वाग्भट के अनुसार गर्भाधान के समय मन्त्र पढ़ने का भी विधान बतायें हैं ।[61] पति दाहिने पैर से और स्त्री बांयें पैर से शय्या पर चड़ने का भी विधान है, स्त्री पुरूष के दाहिने ओर रहें ।[62] आचार्य चरक ने भी इस बात को माना है । आचार्य चरक के अनुसार शय्या पर आरुढ़ होकर दोनों स्त्री पुरुष उत्तम गर्भोत्पति की भावना के ओतप्रोत होकर मन्त्र का पाठ करें एवं तत्पश्चात् सहवास में प्रवृत्त हो। चरक ने गर्भाधान की विधि बताई है- पुरुष के नीचे स्त्री अधोमुखी सोई हो या ऊर्ध्वमुख सोये पुरूष के ऊपर अधोमुखी स्त्री सोई हुई हो तो मैथुन न करें । दक्षिण पार्श्व में सोई स्त्री का कफ जाकर गर्भाशय के मुख को बन्द कर देता है । जब वामपार्श्व में सोई स्त्री के साथ मैथुन किया जाता है तब पीडित पित्त आर्तव और शुक्र को विदग्ध कर उनकी प्रजनन क्षमता को नष्ट कर देता है । इसलिये स्त्री को चाहिए कि वह उत्तान सोकर ही मैथुन कराये और पुरुष से गर्भबीज शुक्र को ग्रहण करे । ऐसा करने से वात-पित-कफ अपने नियत स्थान में रहते है और कोई विकार नहीं उत्पन्न करते हैं ।[63] यजुर्वेद में गर्भाधान की स्थिति के विषय में लिखा है- स्त्री-पुरुष गर्भाधान के समय परस्पर मिल, प्रेम पूरित होकर शरीर के साथ शरीर का अनुसन्धान करके गर्भ का धारण करे।[64] इस विषय पर शतपथ ब्राह्मण में भी उल्लेख प्राप्त होता है।[65] पारस्करगृह्यसूत्र में गर्भाधान के विषय में लिखा है- मैं तेरे प्राणों के साथ अपने प्राणों को, अस्थियों के साथ अस्थियों को, मांसो के साथ मांसों को और त्वचा के साथ त्वचा को जोड़ता हूँ।[66]

वेद, पुराण, स्मृति ग्रन्थों में प्रकृति के नियम के अनुसार स्त्री और पुरुष के मिलन को एक संस्कार के रुप में स्थान दिया है। आने वाले प्रजन्म के लिए पति पत्नी दोनों प्रसन्न चित्त होकर आने वाली सन्तति के लिए शुभ वचन एवं शुद्ध कल्पना करके ईश्वर से प्रार्थना करके भ्रूण स्थापन करें तथा गर्भाधान संस्कार करें। ऋग्वेद में वर्णन है कि पति पत्नी किसी लिङ्ग विशेष की प्रार्थना न करते हुए उत्तम सन्तान के लिए प्रार्थना करते है ।[67] इस प्रकार केवल कामासक्त न होकर आने वाली सन्तति के लिए अच्छी भावना रखते हुए दोनों की सहमति से प्रेमपूर्वक गर्भाधान किया करनी चाहिए ।

उत्तम सन्तान के लिए आहार का भी वर्णन प्राप्त होता है । उत्तम सन्तान का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर ही निर्भर होता है –

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।[68]

आचार्य वागभट के अनुसार जिस दिन गर्भाधान करने की इच्छा हो, उस दिन विशेष करके पुरुष को मुलेठी/मधुका (Liquorice) आदि मधुर वर्ग के औषधद्रव्यों से पकाये गये दूध तथा घृत का सेवन कराना चाहिए ।[69] उसी प्रकार स्त्री के विषय में बताया गया है कि गर्भधारण करने की इच्छुक स्त्री का तेल में पकाये गए पकवानों, उड़द के पदार्थों तथा पित्त को बढ़ाने वाले भोज्य पदार्थों को खिलाकर उसका उपचार करें ।[70]

उपसंहार

सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक दृष्टि से गर्भाधान संस्कार का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । स्त्री और पुरुष के मिलन को केवल भोग विलास की वस्तु न समझकर सन्तति की प्राप्ति के लिए देवताओं से प्रार्थना की गई है । स्त्री पुरुष के मिलन में पुरुष अपनी पत्नी को सम्मान करते हुए उससे बलवान पुत्र तथा पुत्री की इच्छा प्रकट करते है, इन उत्कृष्ट भावनाओं को भी इस संस्कार के साथ जोड़ा गया है । गर्भाधान के समय मन में जो विचार प्रबल होगें उन विचारों का सन्तान पर प्रभाव अवश्य दिखता है। इस विचार को ध्यान में रखते हुए आने वाली सन्तति का मन शुद्ध, स्वच्छ विचार पूर्ण हो, इसलिये इस संस्कार का वैदिक काल से ही महत्त्व दिया गया है । वेद, स्मृति, गृह्यसूत्र, उपनिषद् सभी में गर्भाधान संस्कार का वर्णन किया गया है, वहाँ हम उन व्यक्तियों को पाते हैं जो अपनी स्त्री समीप सन्तति उत्पति रूप एक निश्चित उद्देश्य को लेकर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सन्तान की उत्पति के लिए एक पूर्व नियत रात्रि में निश्चित प्रकार से ऐसा धार्मिक पवित्रता को लेकर जाते थे, जो भावी सन्तान को निर्मल करती थी। सन्तानोत्पति में आधारभूत विचार था-

अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम् ।[71]

सन्तान माता पिता के अङ्ग-अङ्ग का निचोड़ होती है, एक तरह से उनकी आत्मा ही होती है। इसलिये सन्तान उत्पति के समय अपना जो उत्कृष्टतम रूप हो वही वर्तमान होना चाहिये।

समाज तथा परिवार को उत्तम सन्तान देने की विधि गर्भाधानसंस्कार में ही वर्णित है । आने वाली सन्तति अगर उत्तम संस्कारपूर्ण हो तो समाज भी उसी तरह संस्कारों से युक्त दोषों से मुक्त स्वच्छ शान्तिपूर्ण होवें । प्राचीन आचार्यों ने सोच समझकर निर्मल शुद्ध समाज के लिये मनुष्य के नित्य कर्म को संस्कारों से युक्त किया था और उसका विधान भी दिया है।

---

[60] इच्छेतां यादृशं पुत्रं तद्रूपचरितांश्च तौ। चिन्तयेतां जनपदांस्तदाचारपरिच्छदौ ॥ शारीरस्थान, प्रथमाध्याय, ३०, अष्टाङ्गहृदयम्

[61] ॐ अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता त्वां
दधातु विधाता त्वां दधातु ब्रह्मवर्चसा भवेति ।
ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णुः सोमः सूर्यस्तथाऽश्विनौ
भगोऽथ मित्रवरुणौ वीरं ददतु मे सुतम् ॥शारीरस्थान, प्रथमाध्याय, ३३, अष्टाङ्गहृदयम्

[62] प्राग्दक्षिणेन पादेन शय्यां मौहूर्तिकाज्ञया । आरोहेत् स्त्री तु वामेन तस्य दक्षिणपार्श्वतः ॥ शारीरस्थान, प्रथमाध्याय,३१,३२, अष्टाङ्गहृदयम्

[63] न च न्युञ्जां पार्श्वगतां वा संसेवेत । न्युञ्जाया वातो बलवान् स योनिं पीड्यति, पार्श्वगताया दक्षिणे पार्श्वे श्लेष्मा स च्युतः पिदधाति गर्भाशयं, वामे पार्श्वे पित्तं तदस्याः पीडितं विदहति रक्तं शुक्रं च, तस्मादुत्तानां बीजं गृह्णीयात्; तथाहि यथास्थानमवतिष्ठन्ते दोषाः ॥ चरकसंहिता, जातिसूत्रीयशारीर अष्टम अध्याय, ६

[64] मुखँ सदस्य शिर इत्स्तेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती ।
चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ यजुर्वेद १९.८८

[65] अथ यामिच्छेत् । गर्भै दधीतेति तस्यामथँ निष्ठाप्य मुखेन मुखं सन्धायापान्याभि प्राण्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदधामीति गर्भिण्येव भवति॥ शत. १४.९.४.१०

[66] प्राणैस्ते प्राणान् सन्दधाम्यस्थिभिरस्थीनि मासैर्मांसानि त्वचा त्वचमिति ॥ पार. १.११.५

[67] विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रुपाणि पिंशतु । आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भ दधातु ते ॥१॥
गर्भ देहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रा जा ॥२॥
हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना । तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥३॥ ऋ.मं. १०. सूत्र १८४

[68] छान्दोग्य उपनिषद् ।

[69] नरं विशेषात् क्षीराज्यैर्मधुरौषसंस्कृतैः ॥ शारीरस्थान, प्रथमाध्याय,१९, अष्टाङ्गहृदयम्

[70] नारीं तैलेन माषैश्च पित्तलैः समुपाचरेत् । शारीरस्थान, प्रथमाध्याय, अष्टाङ्गहृदयम्

[71] ३. ४ निरुक्त

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

1. The Bodhayana Grhyasutra, shastri, R.Shama (edited), Panini, New Delhi: Ansari Road, Daryaganj 1982
2. अष्टाङ्गहृदयम्, (व्याख्याकार) त्रिपाठी, ब्रह्मानन्द. दिल्ली : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्टान, २००७
3. काणे, पी.वी. धर्मशास्त्र का इतिहास. लखनऊ : उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, १९९२
4. चरकसंहिता, (प्रथम भाग).(व्याख्याकार) शुक्ल, विद्याधर. (व्याख्याकार) त्रिपाठी, रविदत्त. दिल्ली : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पुनर्मुद्रण, २०१५
5. सुश्रुतसंहिता (प्रथमभाग). (व्याख्याकार) शास्त्री. अम्बिकादत्त. (प्रस्तावक) मेहता, प्राणजीवन मणिकचन्द्र. वाराणसी : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, २००७
6. त्रिपाठी. कमलाकान्त. गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-संस्कार. वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, २००१
7. सिद्धान्तालंकार, (व्याख्याकार) सत्यव्रत. संस्कार चन्द्रिका. नई दिल्ली : विजयकृष्ण लखनपाल
8. सिंहं मेहरा, बलदेव. अथर्वन्-कृत्या सूक्त गृह्यकर्म एवं संस्कार. दिल्ली: अभिषेक प्रकाशन, २००३
9. गोभिल-गृह्यसूत्र. (सायण टीका) नारायण भट्ट, यशोधर. एफ. नावर. डारपेट, १८८४
10. सरस्वती, विद्यानन्द. संस्कार भास्कर. हरियाणा : रामलाल कपूर ट्रस्ट, १९९८
11. सरस्वती, दयानन्द. संस्कारविधि. अजमेर : वैदिक पुस्तकालय दयानन्दाश्रम केसरगञ्ज, २०१३
12. सिंह, मेहरा. बलदेव. अर्थवन्-कृत्या सूक्त गृह्यकर्म एवं संस्कार. दिल्ली : अभिषेक प्रकाशन, २००३
13. पाण्डेय, राजबली. हिन्दु संस्कार, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, २०१४
14. बौधायन गृह्यसूत्र. (सम्पादक) आर, शामशास्त्री. मैसर, १९२०
15. परिव्राजकाचार्य. संस्कारविधि. दिल्ली : आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, १९८९